International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 28-06-2026, Accepted: 28-07-2026, Published: 12-08-2026
Volume 12, Issue 3, 2026, Page No. 147-151

वृद्ध अस्मिता और हिंदी उपन्यास: 'गिलिगडु' और 'रेहन पर रग्घू'

एस.वी.एस.एस. नारायण राजू
Professor and Head, Department of Hindi, School of Social Sciences & Humanities, Central University of Tamil Nadu, Thiruvarur, Tamil Nadu, India
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.3.12228

सारांश
समकालीन हिंदी साहित्य में वृद्ध–विमर्श तेजी से उभरता हुआ एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक–साहित्यिक विमर्श है, जो बदलते पारिवारिक संबंधों, सामाजिक संरचना, भूमंडलीकरण, नगरीकरण, उपभोक्तावाद तथा व्यक्तिवादी जीवन–दृष्टि के संदर्भ में वृद्धजनों की स्थिति का विश्लेषण करता है. भारतीय समाज में वृद्ध व्यक्ति परंपरागत रूप से अनुभव, ज्ञान, संस्कार और पारिवारिक मार्गदर्शन का केंद्र रहा है, किंतु संयुक्त परिवार के विघटन तथा आधुनिक जीवन–शैली के प्रभाव से उसकी सामाजिक भूमिका और पारिवारिक महत्ता में निरंतर परिवर्तन आया है. प्रस्तुत आलेख में चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'गिलिगडु' तथा काशीनाथ सिंह के 'रेहन पर रग्घू' के विशेष संदर्भ में वृद्धावस्था से जुड़ी भावनात्मक उपेक्षा, अकेलापन, संवादहीनता, पारिवारिक विघटन, संपत्ति–बोध, उपयोगितावादी मानसिकता, असुरक्षा तथा आत्मसम्मान के संकट का विश्लेषण किया गया है. 'गिलिगडु' के बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी जैसे पात्र यह स्पष्ट करते हैं कि आर्थिक सम्पन्नता और परिवार की उपलब्धता भी वृद्ध व्यक्ति के भावनात्मक अकेलेपन को समाप्त नहीं कर पाती. वहीं 'रेहन पर रग्घू' बदलते पारिवारिक मूल्यों और पीढ़ीगत संबंधों के बीच वृद्ध जीवन की विडंबनाओं को उजागर करता है. दोनों उपन्यास वृद्धावस्था को केवल जैविक अवस्था न मानकर मानवीय गरिमा, अस्मिता, आत्मीयता और सामाजिक उत्तरदायित्व से जुड़ा गंभीर प्रश्न बनाते हैं.

मूल शब्दः वृद्ध–विमर्श, वृद्धावस्था, गिलिगडु, रेहन पर रग्घू, पारिवारिक विघटन, अकेलापन, भावनात्मक उपेक्षा, आत्मसम्मान, पीढ़ीगत संघर्ष, मानवीय गरिमा

प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक अनातोले फ्रांस का कथन है कि – "काश! बुढ़ापे के बाद जवानी आती!" यह कथन देखने में जितना सरल और विनोदपूर्ण प्रतीत होता है, उसके भीतर जीवन की एक गहरी विडंबना और मानवीय अनुभूति छिपी हुई है. इसका आशय यह है कि यदि जीवन में बुढ़ापा पहले आता और उसके बाद जवानी, तो मनुष्य के पास अनुभव, समझदारी और परिपक्वता उस समय उपलब्ध होती जब उसके पास ऊर्जा, शक्ति और अवसर भी पर्याप्त मात्रा में होते. वास्तविक जीवन में इसका क्रम उलटा है. युवावस्था में मनुष्य के पास ऊर्जा, समय, उत्साह और संभावनाएँ तो होती हैं, किंतु जीवनानुभव अपेक्षाकृत कम होता है जबकि वृद्धावस्था में अनुभव, धैर्य, विवेक और जीवन–दृष्टि समृद्ध होती है, पर शरीर की क्षमताएँ क्रमशः सीमित होने लगती हैं. यही असंतुलन जीवन की एक बड़ी विडंबना है.

इस कथन में निहित जीवन–दर्शन यह भी संकेत करता है कि यदि मनुष्य अनुभव से प्राप्त परिपक्वता को युवावस्था की ऊर्जा के साथ जोड़ सके, तो जीवन अधिक संतुलित, सार्थक और विवेकपूर्ण हो सकता है. युवावस्था में व्यक्ति कभी–कभी आवेग, अहंकार, असावधानी अथवा भावुकता के प्रभाव में निर्णय लेता है. वृद्धावस्था में वही व्यक्ति अपने जीवन की अनेक घटनाओं को पीछे मुड़कर देखता है और उनके अर्थ को अधिक गहराई से समझता है. इसीलिए बुजुर्गों के अनुभव नई पीढ़ी के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण होते हैं.

इस कथन में एक प्रकार की हास्यात्मक पीड़ा भी निहित है— मनुष्य को सबसे अधिक अनुभव तब प्राप्त होता है जब उसके पास उसे व्यवहार में लाने के अवसर और शारीरिक सामर्थ्य अपेक्षाकृत कम हो जाते हैं. यद्यपि जीवन का प्राकृतिक क्रम बदला नहीं जा सकता, किंतु बुजुर्गों के अनुभव से सीखकर युवा पीढ़ी अपने जीवन को अधिक संतुलित और सार्थक अवश्य बना सकती है. प्रत्येक आयु का अपना सौंदर्य, मूल्य और गरिमा होती है. हर अवस्था को स्वीकार करते हुए उसे सार्थक बनाना ही जीवन की वास्तविक कला है.

अनातोले फ्रांस का यह कथन वस्तुतः एक आशा, एक आह और एक चेतावनी—तीनों को अपने भीतर समेटे हुए है. यह हमें समय के मूल्य का बोध कराता है और यह भी याद दिलाता है कि अनुभव जीवन की अमूल्य संपदा है. यही अनुभव वृद्ध व्यक्ति को समाज की स्मृति, परंपरा और ज्ञान का महत्त्वपूर्ण वाहक बनाता है.

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री–विमर्श, दलित–विमर्श, आदिवासी–विमर्श, किसान–विमर्श और किन्नर–विमर्श के साथ–साथ वृद्ध–विमर्श भी एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक–साहित्यिक विमर्श के रूप में विकसित हुआ है. बदलती सामाजिक संरचना, नगरीकरण, भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद, रोजगार–आधारित पलायन, संयुक्त परिवारों के विघटन और व्यक्तिवादी जीवन–दृष्टि ने वृद्धों की स्थिति को गहराई से प्रभावित किया है.

भारतीय समाज में परंपरागत रूप से वृद्ध व्यक्ति को परिवार का मार्गदर्शक, अनुभव का भंडार और सामाजिक–सांस्कृतिक स्मृति का संवाहक माना जाता रहा है. संयुक्त परिवार व्यवस्था में उसके अनुभव, निर्णय और उपस्थिति को महत्त्व प्राप्त था. किंतु आधुनिक आर्थिक–सामाजिक संरचना में वृद्ध व्यक्ति अनेक बार स्वयं को परिवार की मुख्यधारा से अलग, उपेक्षित, अप्रासंगिक और अकेला अनुभव करने लगता है.

वृद्धावस्था की सबसे बड़ी समस्या केवल शारीरिक दुर्बलता नहीं है. उससे कहीं अधिक भावनात्मक उपेक्षा, संवादहीनता, अकेलापन, उपयोगितावादी दृष्टि, संपत्ति के प्रति परिवार का स्वार्थ, निर्णय प्रक्रिया से बहिष्कार और आत्मसम्मान का क्षरण की समस्या है. वृद्ध–विमर्श इन्हीं समस्याओं को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान करता है.

चित्रा मुद्गल का 'गिलिगडु' और काशीनाथ सिंह का 'रेहन पर रग्घू' ऐसे महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं जिनमें आधुनिक भारतीय परिवार और समाज में वृद्ध व्यक्ति की बदलती स्थिति, उसकी पीड़ा, असुरक्षा, अकेलेपन और आत्मसम्मान के संकट को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है.

'गिलिगडु': वृद्ध जीवन की मार्मिक कथा

चित्रा मुद्गल का 'गिलिगडु' वृद्ध जीवन की त्रासदी, अकेलेपन और भावनात्मक उपेक्षा को केंद्र में रखने वाला अत्यंत मार्मिक उपन्यास है. यह उपन्यास समाज में उन बुजुर्गों की व्यथा को उजागर करता है जिनके पास आर्थिक साधन हैं, परिवार है, संतान है, किंतु फिर भी वे भावनात्मक रूप से अकेले हैं.

उपन्यास की कथा मुख्यतः दो सेवानिवृत्त वृद्ध व्यक्तियों बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी के जीवन के इर्द–गिर्द विकसित होती है. दोनों की मुलाकात प्रातःकालीन सैर के दौरान होती है और धीरे–धीरे उनके बीच आत्मीयता का संबंध विकसित होता है. कुछ दिनों की यह मित्रता उनके जीवन के सबसे गहरे अकेलेपन, स्मृतियों, पारिवारिक उपेक्षा और भावनात्मक आवश्यकताओं को उजागर करती है.

दोनों पात्र आर्थिक दृष्टि से असहाय नहीं हैं. उनके परिवार और संतानें भी हैं, किंतु इसके बावजूद वे अकेलेपन से जूझ रहे हैं. यही उपन्यास का सबसे मार्मिक सामाजिक सत्य है. आधुनिक समाज में वृद्ध व्यक्ति की समस्या केवल आर्थिक निर्भरता नहीं है. आर्थिक रूप से सक्षम व्यक्ति भी यदि संवाद, सम्मान और आत्मीयता से वंचित हो जाए, तो उसका जीवन अत्यंत पीड़ादायक हो सकता है.

उपन्यास में वृद्धों की स्थिति को व्यापक रूप से देखा जाए तो तीन प्रकार की परिस्थितियाँ सामने आती हैं— एक वे वृद्ध जिनका कोई पारिवारिक सहारा नहीं है और जो परिस्थितिवश अकेले रहते हैं. दूसरे वे जिनका परिवार तो है, किंतु उन्हें परिवार से अलग कर दिया गया है और तीसरे वे जो अपने परिवार के साथ रहते हुए भी गहरे भावनात्मक अकेलेपन का अनुभव करते हैं. यह तीसरी स्थिति आधुनिक परिवार की सबसे बड़ी विडंबनाओं में से एक है.

'गिलिगडु' का अर्थ चिड़िया है. उपन्यास में कर्नल स्वामी अपनी जुड़वा पोतियों—कुमुदनी और कात्यायिनी को प्रेमपूर्वक 'गिलिगडु' कहते हैं. यह शब्द केवल बाल–सुलभ चंचलता का परिचायक नहीं है, बल्कि वृद्ध मन की उस भावनात्मक आकांक्षा का प्रतीक भी है जो अपने परिवार, विशेषतः नाती–पोतों के स्नेह, निकटता और चहल–पहल में जीवन की निरंतरता खोजता है. कर्नल स्वामी और बाबू जसवंत सिंह की बातचीत में प्रकृति और बच्चों के प्रति संवेदनशीलता का सुंदर चित्र उपस्थित होता है, यथा –

"वो देखिए! कहाँ खो गए आप मि.सिंह."खेतों के बीचोबीच रखवालों की मड़ैया?

कैसी सुंदर बनी हुई है! हमारे केरल जैसी."

"माय गाड़! उन मैनाओं को देखिए जरा–

नाली में चोंच डाले कैसे पानी पी रही हैं, जैसे ब्याह की पंगत में खाने नहीं बैठते लोग.'

'गिलि जानते हैं किसे कहते हैं?

'गिलि माने चिड़िया. गिलिगडु माने चिड़िया.

आपको तो यह भी नहीं पता मालूम कि हमारे घर में सुंदर–सुंदर गिलिगडु है." 'पक्षियों का शौक है आपको ?

'मेरी गिलिगडु है मेरी जुड़वा पोतियाँ!

चहकती–फुदकती, मस्ती करती, हुड़दंगे मचाती – कुमुदनी और कात्यायिनी... चार साल की है, स्कूल जाती है. हाव–भाव के संग कूद फांद नए सीखे गीत भी सुनाती है गिलिगडु." (1)

इस प्रसंग में 'गिलिगडु' बच्चों की मासूमियत, जीवंतता और स्नेह की दुनिया का प्रतीक बन जाता है. वृद्ध व्यक्ति के जीवन में बच्चों की उपस्थिति उसे समय की निरंतरता का अनुभव कराती है. किंतु जब वही संबंध केवल स्मृति अथवा कल्पना में रह जाए, तब उसका अकेलापन और भी तीव्र हो जाता है.

कर्नल स्वामी बताते हैं कि उनकी पत्नी वर्षों पूर्व गुजर चुकी है. उनके तीन बेटे और तीन बहुएँ हैं, फिर भी वे अकेले हैं. दूसरी ओर बाबू जसवंत सिंह अपने परिवार के साथ रहते हुए भी अकेलेपन का अनुभव करते हैं. इस प्रकार दोनों पात्र वृद्धावस्था के अकेलेपन के दो भिन्न किंतु परस्पर जुड़े रूपों का प्रतिनिधित्व करते हैं. बाबू जसवंत सिंह कभी कानपुर में सिविल इंजीनियर रहे थे. उन्होंने जीवन भर अपने परिवार के लिए कार्य किया, किंतु वृद्धावस्था में उनके अपने बेटे नरेंद्र और बहू सुनयना के व्यवहार में उनके प्रति वह आत्मीयता और सम्मान नहीं बचा जिसकी उन्हें अपेक्षा थी. वे धीरे–धीरे परिवार में स्वयं को अतिरिक्त और अनुपयोगी अनुभव करने लगते हैं.

आधुनिक परिवार की उपयोगितावादी मानसिकता का सबसे दुखद पक्ष यही है कि जो व्यक्ति जीवन भर परिवार के निर्माण, बच्चों की शिक्षा, आर्थिक सुरक्षा और सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए त्याग करता है, वही वृद्धावस्था में कभी–कभी 'बोझ' समझा जाने लगता है. बाबू जसवंत सिंह इसी विडंबना के प्रतिनिधि पात्र हैं. परिवार की उपेक्षा उन्हें मानसिक रूप से गहरी चोट पहुँचाती है. स्थिति यहाँ तक पहुँचती है कि उनके बेटे द्वारा उन्हें वृद्धाश्रम भेजने की संभावना पर विचार किया जाता है. वे अपनी बेटी शालिनी से शिकायत करते हैं, किंतु वहाँ भी उन्हें अपेक्षित सहानुभूति प्राप्त नहीं होती. पारिवारिक संवेदनहीनता उनके मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है.

इसके बावजूद बाबू जसवंत सिंह के भीतर करुणा और मानवीयता जीवित है. वे अपने सेवकों और उनकी बेटियों की पढ़ाई के लिए सहायता भेजते हैं. इससे स्पष्ट होता है कि वृद्धावस्था ने उनकी संवेदनशीलता को कम नहीं किया है; बल्कि जीवनानुभव ने उन्हें और अधिक मानवीय बनाया है. बाबू जसवंत सिंह अपने मित्र कर्नल स्वामी को कई दिनों तक सैर पर न देखकर चिंतित हो उठते हैं. कमजोर शरीर और बीमारी के बावजूद वे उनसे मिलने निकल पड़ते हैं. 'गिलिगडु' कही जाने वाली जुड़वा पोतियों के लिए मिठाई, आइसक्रीम और चॉकलेट लेकर वे कर्नल स्वामी के फ्लैट पहुँचते हैं. किंतु वहाँ उन्हें जो सत्य ज्ञात होता है, वह उन्हें भीतर तक तोड़ देता है. यथा –

"जी?

बाबू जसवंतसिंह अचकचाए !

जी मैं कर्नल स्वामी का दोस्त जसवंतसिंह हूँ. उनसे मिलने आया हूँ.

कहाँ से आए हैं आप?

पास के मयूर विहार से. दरअसल बहुत दिनों से वे सैर पर नहीं आए. सोचा, चलकर मिल आऊँ..... घर पर कोई नहीं है ?

महिला का स्वर अनायास तल्ख हो आया.

आप उनके दोस्त हैं और आपको नहीं मालूम.

'जी' आपके दोस्त अब इस दुनिया में नहीं रहे.....

'मतलब'?

'खत्म हो गए. ईश्वर को प्यारे हो गए." (2)

कर्नल स्वामी की मृत्यु की सूचना बाबू जसवंत सिंह के लिए केवल मित्र–वियोग नहीं है. यह उन्हें अपने भविष्य और अपने अकेलेपन का भी आभास कराती है. जिस व्यक्ति के साथ वे अपनी भावनाएँ साझा कर सकते थे, वह भी अब उनके जीवन से चला गया. पड़ोस की महिला श्रीमती श्रीवास्तव बताती हैं कि कर्नल स्वामी प्रातः काल सैर के लिए निकलते समय हृदयाघात का शिकार हुए. उन्हें अस्पताल ले जाया गया, किंतु वे बच नहीं सके. बाबू जसवंत सिंह के लिए इससे भी अधिक भयावह सत्य यह था कि जिन बेटों, बहुओं और पोतियों की चर्चा कर्नल स्वामी बड़े प्रेम के साथ करते थे, वे वास्तव में उनके साथ नहीं रहते थे. जब बाबू जसवंत सिंह पूछते हैं कि उनके परिवार के लोग कहाँ थे, तब उन्हें पता चलता है कि कर्नल स्वामी वर्षों से अकेले रहते

थे. बेटे अलग–अलग शहरों में थे. कर्नल स्वामी अपने बेटों की मदद के लिए अपनी संपत्ति पहले ही लगा चुके थे, किंतु बाद में बेटों की दृष्टि उनके शेष फ्लैट और संपत्ति पर भी केंद्रित हो गई थी. यहाँ तक कि संपत्ति के विवाद में बेटे द्वारा पिता के साथ हिंसात्मक व्यवहार तक की स्थिति उत्पन्न हुई. इस पर श्रीमती श्रीवास्तव की प्रतिक्रिया अत्यंत तीखी और मार्मिक है कि–

"ऐसी कसाई औलादों से तो आदमी निपूता भला. हमें इस बात का कोई गम नहीं कि हमारी कोई अपनी औलाद नहीं..." (3)

यह कथन आधुनिक पारिवारिक संबंधों के विघटन पर कठोर टिप्पणी है. संतान का होना वृद्धावस्था में सुरक्षा और आत्मीयता की गारंटी नहीं रह गया है. संपत्ति, स्वार्थ और व्यक्तिवाद पारिवारिक संबंधों को भी प्रभावित करने लगे हैं. कर्नल स्वामी की त्रासदी यह है कि वे अपने बच्चों और पोतियों की स्मृतियों में भावनात्मक संसार निर्मित करके जीते हैं, किंतु वास्तविक जीवन में अकेले हैं. उनकी मृत्यु वृद्धावस्था की उस गहरी सामाजिक त्रासदी को उजागर करती है जिसमें व्यक्ति परिवार होने के बावजूद पारिवारिक संरक्षण और आत्मीयता से वंचित रह जाता है.

'रेहन पर रग्घू': बदलते परिवार और वृद्ध अस्मिता का संकट

काशीनाथ सिंह का 'रेहन पर रग्घू' भूमंडलीकरण के दौर में बदलते भारतीय समाज, परिवार, गाँव, संबंधों और मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपन्यास है. यह केवल एक व्यक्ति अथवा एक परिवार की कथा नहीं है, बल्कि गाँव से शहर और शहर से विदेश तक फैलते नए सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज है. भूमंडलीकरण के प्रभाव से आर्थिक अवसरों में वृद्धि हुई है, किंतु इसके साथ पारंपरिक सामूहिकता, पारिवारिक आत्मीयता, भूमि के साथ भावनात्मक संबंध और पीढ़ियों के बीच संवाद में भी व्यापक परिवर्तन आया है. उपन्यास के केंद्रीय पात्र रघुनाथ इन परिवर्तनों के बीच खड़े एक ऐसे वृद्ध व्यक्ति हैं जिनके लिए परिवार, भूमि, गाँव और संबंध केवल आर्थिक वस्तुएँ नहीं, बल्कि अस्तित्व और स्मृति के आधार हैं.

रघुनाथ पहाड़पुर गाँव के शिक्षित व्यक्ति हैं. वे एक डिग्री कॉलेज में अध्यापक रहे हैं. उनकी पत्नी शीला है और उनके तीन बच्चेकृ बेटी सरला तथा बेटे संजय और राजूकृहैं. उन्होंने अपनी समस्त शक्ति, बुद्धि, श्रम और आर्थिक संसाधनों को बच्चों के भविष्य को सँवारने में लगा दिया. उनके लिए जीवन की सफलता का अर्थ अपने बच्चों को शिक्षित, संपन्न और सुरक्षित बनाना था. सरला पढ़–लिखकर नौकरी करने लगती है. संजय सॉफ्टवेयर इंजीनियर बनकर अमेरिका तक पहुँचता है. रघुनाथ अपनी सीमित आर्थिक स्थिति के बावजूद बच्चों की शिक्षा में कोई कमी नहीं रखते. यहाँ तक कि उनकी शिक्षा के लिए खेत तक रेहन रखना पड़ता है. इस अर्थ में उपन्यास का शीर्षक केवल भूमि के गिरवी रखे जाने का संकेत नहीं है. धीरे–धीरे पूरा वृद्ध जीवन ही मानो बच्चों के भविष्य के लिए 'रेहन' पर चढ़ जाता है. रघुनाथ के सपनों और नई पीढ़ी की जीवन–दृष्टि में दूरी बढ़ती जाती है. संजय अपनी पसंद से सोनल से विवाह करता है. रघुनाथ उसके विवाह के लिए अपने कॉलेज के मैनेजर और पूर्व विधायक की बेटी के साथ संबंध की अपेक्षा लगाए हुए थे, किंतु संजय अपनी स्वतंत्र पसंद को प्राथमिकता देता है.

यह प्रसंग केवल पीढ़ीगत संघर्ष नहीं है. इसके भीतर पिता की वह मनःस्थिति भी है जिसने अपना पूरा जीवन बच्चों के भविष्य के लिए लगा दिया और बदले में उनसे भावनात्मक सहभागिता तथा निर्णयों में सम्मान की अपेक्षा की. जब संजय उनकी इच्छाओं से अलग निर्णय लेता है, तो रघुनाथ और शीला के भीतर गहरा भावनात्मक आघात उत्पन्न होता है. उधर बेटी सरला भी अपनी पसंद से सुदेश भारती से विवाह करना चाहती है. यहाँ रघुनाथ की अपनी सामाजिक रूढ़ियाँ सामने आती हैं. सुदेश भारती की जातिगत पृष्ठभूमि को लेकर उनकी असहमति उनके भीतर उपस्थित पारंपरिक सामाजिक संस्कारों को उजागर करती है. इस बिंदु पर उपन्यास वृद्ध व्यक्ति को केवल पीड़ित के रूप में प्रस्तुत नहीं करता, बल्कि उसके अंतर्विरोधों और पूर्वाग्रहों की ओर भी संकेत करता है.

यही 'रेहन पर रग्घू' की महत्त्वपूर्ण विशेषता है. वृद्ध–विमर्श का अर्थ वृद्ध पात्र को हर स्थिति में निर्दोष सिद्ध करना नहीं, बल्कि उसके अनुभव, बदलते समय के साथ उसके संघर्ष और उसकी मानसिक संरचना को संवेदनशीलता के साथ समझना है. रघुनाथ के लिए पहाड़पुर का घर और जमीन केवल आर्थिक संपत्ति नहीं हैं. वे उनकी स्मृति, पहचान, पूर्वजों और जीवन–संघर्ष से जुड़े हुए हैं. इसके विपरीत नई पीढ़ी जमीन को बाजार मूल्य और 'कैश' के रूप में देखने लगती है.

रघुनाथ अपने पुश्तैनी खपरैल वाले घर में रहते हैं और भविष्य में अपने प्रॉविडेंट फंड से नया घर बनवाने का सपना देखते हैं. किंतु उन्हें यह देखकर गहरा दुःख होता है कि उनके बच्चों का उस घर और जमीन से कोई भावनात्मक संबंध नहीं बचा है.

भूमंडलीकरण के युग में संपत्ति के प्रति दृष्टिकोण में आए परिवर्तन को उपन्यास अत्यंत सूक्ष्मता से प्रस्तुत करता है. पुरानी पीढ़ी के लिए जमीन स्मृति, अस्तित्व और जीवन–सुरक्षा है, जबकि नई पीढ़ी के लिए वह वित्तीय मूल्य में परिवर्तित की जा सकने वाली संपत्ति बन जाती है. रघुनाथ और शीला की सबसे बड़ी पीड़ा यह नहीं है कि उनके बच्चे भौगोलिक रूप से दूर हैं, बल्कि यह है कि उनके बीच भावनात्मक संवाद भी लगातार कम होता जा रहा है. संजय विवाह कर लेता है, किंतु माता–पिता को बहू से मिलवाने तक नहीं आता. बेटी अपने विवाह के प्रश्न पर पिता की असहमति के सामने स्वतंत्र निर्णय की घोषणा करती है. छोटा बेटा राजू भी अपनी अलग जीवन–शैली में व्यस्त है. परिवार के भीतर यह दूरी एक प्रसंग में विशेष रूप से सामने आती है. एक रात सोनल का फोन आता है कि–

'हैलो' कहा उन्होंने फिर शीला को फोन दे दिया.
"वह कल आ रही है हमें ले जाने के लिए"
"तुम्हें जाना हो जाओ,
मुझे नहीं जाना"

"बहुत रो रही थी! पूछ रही थी कि हमारी कौन सी ऐसी गलती है कि देखने के लिए आना तो दूर, आप लोगों ने फोन तक नहीं किया?" (4)

रघुनाथ की प्रतिक्रिया उनके भीतर जमा आक्रोश, संदेह और उपेक्षा–बोध को व्यक्त करती है कि– "उसने फोन किया? हम सपना देख रहे हैं कि महारानी लौट आई है अपने देश ?
आकाशवाणी हुई थी उनके आगमन की ?"
"रो–रो कर कह रही थी कि मैं मम्मी पापा के बिना नहीं रह सकती."
"झूठ बोलती है! फुसला रही है तुम्हें! हमें ! जानती ही कितना है हमें? न कभी देखा है, न मिली है, वह क्या जाने मम्मी पापा को? मैं तो जानता भी नहीं कि मेरे कोई बहु है." (5)

यहाँ संवाद की समस्या दोनों ओर दिखाई देती है. संबंधों में दूरी केवल नई पीढ़ी के कारण ही नहीं, बल्कि संचित अविश्वास, आहत अहं, अपेक्षाओं और संवादहीनता के कारण भी बढ़ती है. यही पारिवारिक संबंधों की आधुनिक विडंबना है. बाद में सोनल को ज्ञात होता है कि संजय ने दूसरी शादी कर ली है. यह घटना आधुनिक वैवाहिक और पारिवारिक संबंधों में आई अस्थिरता को प्रकट करती है. सोनल की पीड़ा देखकर रघुनाथ के भीतर पिता का भाव जागता है. वे उसके साथ खड़े होना चाहते हैं.

यहाँ रघुनाथ का चरित्र एक नए स्तर पर खुलता है. जिस बहू के प्रति वे पहले अविश्वास रखते थे, उसके दुःख में वे संवेदनशील हो जाते हैं. वृद्धावस्था व्यक्ति को केवल स्मृति और निराशा का पात्र नहीं बनाती; उसमें अनुभव के कारण नए संबंधों को समझने की क्षमता भी विकसित हो सकती है. रघुनाथ के लिए गाँव की जमीन अनमोल है, जबकि उनके बेटों के लिए उसका आर्थिक मूल्य ही अधिक महत्त्वपूर्ण है. संजय की दृष्टि में उस जमीन का मूल्य उसकी आय की तुलना में अत्यंत कम है. ऐसी टिप्पणी रघुनाथ को भीतर तक आहत करती है, क्योंकि जिस भूमि को उन्होंने अपने बच्चों की शिक्षा और भविष्य के लिए रेहन रखा था, वही भूमि अब उनकी संतानों के लिए भावनात्मक अर्थ खो चुकी है.

उपन्यास के अंतिम हिस्सों में रघुनाथ का अकेलापन अत्यंत गहरा हो जाता है. जब कुछ लोग उनसे जबरन जमीन के कागजात पर हस्ताक्षर करवाने आते हैं, तो वे व्यंग्यात्मक ढंग से कहते हैं कि जमीन लेने के बजाय उन्हें ही अगवा कर लिया जाए और बेटों से फिरौती माँगी जाए. इस कथन के भीतर वृद्ध व्यक्ति की गहरी निराशा और आत्म–मूल्य के क्षरण की अनुभूति छिपी हुई है. रघुनाथ उन लोगों के साथ ऐसे चले जाते हैं मानो किसी तीर्थ–यात्रा पर जा रहे हों. उनके भीतर यह भावना है कि बेटों ने यदि फिरौती न भी दी, तो क्या अंतर पड़ता है—अब जीवन में बचा ही क्या है? यह प्रसंग अत्यंत करुण है. जिस पिता ने अपने बच्चों के भविष्य के लिए सब कुछ लगाया, वही वृद्धावस्था में अपने अस्तित्व के मूल्य को लेकर संशयग्रस्त हो जाता है. फिर भी उसके भीतर धरती के प्रति गहरी आस्था बची रहती है. मनुष्य चला जाएगा, किंतु धरती बनी रहेगी. यह भाव उपन्यास को केवल वृद्ध–पीड़ा तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे जीवन, समय, पीढ़ी और अस्तित्व के व्यापक प्रश्न से जोड़ देता है.

'गिलिगडु' और 'रेहन पर रग्घू': एक तुलना

दोनों उपन्यासों में वृद्ध पात्रों की परिस्थितियाँ भिन्न हैं, किंतु उनकी मूल पीड़ा एक–दूसरे से जुड़ी हुई है. 'गिलिगडु' में बाबू जसवंत सिंह और कर्नल स्वामी शहरी वृद्ध जीवन के अकेलेपन और पारिवारिक उपेक्षा के प्रतिनिधि हैं, जबकि 'रेहन पर रग्घू' के रघुनाथ गाँव, जमीन, परिवार और नई वैश्विक पीढ़ी के बदलते संबंधों के बीच फँसे वृद्ध व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं.

'गिलिगडु' में अकेलापन मुख्यतः भावनात्मक और पारिवारिक है. कर्नल स्वामी की त्रासदी यह है कि उनके बच्चे हैं, किंतु वे उनके पास नहीं हैं. बाबू जसवंत सिंह की त्रासदी इससे भी अधिक जटिल है. वे परिवार के भीतर रहते हुए भी अपने को अनावश्यक और अकेला अनुभव करते हैं.

'रेहन पर रग्घू' में वृद्धावस्था की पीड़ा भूमंडलीकरण और बदलते सामाजिक मूल्यों से जुड़ती है. रघुनाथ के बच्चे शिक्षित, सफल और आधुनिक हैं, किंतु उनकी सफलता और माता–पिता की अपेक्षाओं के बीच भावनात्मक दूरी बढ़ती जाती है. यहाँ पीढ़ियों के बीच केवल भौगोलिक दूरी नहीं है. मूल्य, जीवन–दृष्टि, संपत्ति–बोध और संबंधों की परिभाषाएँ भी बदल चुकी हैं.

दोनों उपन्यास यह प्रश्न उठाते हैं कि क्या आर्थिक समृद्धि और आधुनिकता ने पारिवारिक संवेदनशीलता को भी समृद्ध किया है? व्यक्ति जितना स्वतंत्र और आर्थिक रूप से सक्षम हुआ है, क्या उतना ही अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों के प्रति भी संवेदनशील हुआ है? इन प्रश्नों का उत्तर दोनों उपन्यासों में सरल नहीं है, किंतु वृद्ध पात्रों की पीड़ा आधुनिक समाज के समक्ष एक गंभीर नैतिक प्रश्न अवश्य उपस्थित करती है.

वृद्धावस्था और भारतीय पारिवारिक मूल्य

भारतीय संस्कृति में माता–पिता और वृद्धों के प्रति सम्मान को सदैव महत्त्वपूर्ण मूल्य माना गया है. बुजुर्ग केवल परिवार के आश्रित सदस्य नहीं, बल्कि अनुभव, स्मृति, परंपरा और जीवन–दृष्टि के संवाहक होते हैं. किंतु आधुनिकता और व्यस्त जीवनशैली के कारण कई परिवारों में वृद्धों के लिए समय, संवाद और धैर्य लगातार कम होता दिखाई देता है. समस्या आधुनिकता में नहीं, बल्कि उस आधुनिकता में है जो मनुष्य को केवल आर्थिक उत्पादकता और उपयोगिता के आधार पर मूल्यांकित करती है. जब व्यक्ति की सामाजिक महत्ता उसकी आय, नौकरी अथवा उत्पादन–क्षमता से निर्धारित होने लगे, तब वृद्ध व्यक्ति स्वाभाविक रूप से हाशिए पर चला जाता है. वृद्ध व्यक्ति के लिए आर्थिक सुरक्षा आवश्यक है, किंतु उससे भी अधिक आवश्यक है आत्मसम्मान, संवाद, अपनापन और निर्णयों में सहभागिता. उसके लिए यह अनुभव अत्यंत पीड़ादायक होता है कि जिस घर को बनाने में उसने अपना पूरा जीवन लगा दिया, उसी घर में उसकी राय और उपस्थिति अप्रासंगिक समझी जाने लगे.

वृद्ध–विमर्श हमें यह समझने की दृष्टि प्रदान करता है कि वृद्धों की समस्या केवल व्यक्तिगत परिवारों की समस्या नहीं है. यह आधुनिक सामाजिक संरचना, बाजारवादी जीवन–दृष्टि, पीढ़ीगत परिवर्तन और मानवीय संवेदना से जुड़ा व्यापक प्रश्न है. आज वृद्धजन अनेक स्तरों पर चुनौतियों का सामना कर रहे हैं—अकेलापन, स्वास्थ्य संबंधी कठिनाइयाँ, आर्थिक असुरक्षा, पारिवारिक संवाद का अभाव, संपत्ति संबंधी विवाद, भावनात्मक उपेक्षा और कभी–कभी हिंसा तक. सबसे दुखद स्थिति तब उत्पन्न होती है जब वृद्ध व्यक्ति अपने ही घर में अतिथि, बोझ अथवा अनुपयोगी सदस्य की तरह अनुभव करने लगता है.

'गिलिगडु' में कर्नल स्वामी की स्थिति और 'रेहन पर रग्घू' में रघुनाथ की पीड़ा यह स्पष्ट करती है कि वृद्धों का अकेलापन केवल शारीरिक रूप से अकेले रहने से उत्पन्न नहीं होता. परिवार के बीच रहते हुए भी व्यक्ति भावनात्मक रूप से गहरे अकेलेपन का शिकार हो सकता है. इसलिए वृद्धों के लिए केवल वृद्धाश्रम, पेंशन, चिकित्सा या आर्थिक सहायता पर्याप्त नहीं है. उन्हें गरिमापूर्ण जीवन, सामाजिक सहभागिता, भावनात्मक सुरक्षा और पारिवारिक संवाद की भी आवश्यकता है. परिवार की नई पीढ़ी को यह समझना आवश्यक है कि वृद्ध व्यक्ति की धीमी गति, स्वास्थ्य संबंधी सीमाएँ अथवा बदलते समय के प्रति उसकी आशंकाएँ उसे अप्रासंगिक नहीं बनातीं. उसके पास वर्षों का अनुभव, सामाजिक स्मृति और जीवन की वह समझ होती है जो किसी पुस्तक अथवा तकनीक से सहज प्राप्त नहीं की जा सकती.

वृद्ध–विमर्श की प्रासंगिकता आने वाले समय में और अधिक बढ़ेगी. बदलती जनसांख्यिकीय संरचना, औसत आयु में वृद्धि, एकल परिवार व्यवस्था, प्रवासन और वैश्विक रोजगार संस्कृति के कारण वृद्धों की संख्या और उनके अकेलेपन की समस्या दोनों बढ़ रही हैं.

ऐसी परिस्थिति में साहित्य की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो जाती है. साहित्य आँकड़ों में दिखाई न देने वाली पीड़ा को मानवीय चेहरा प्रदान करता है. वह हमें केवल यह नहीं बताता कि वृद्ध लोग अकेले हैं, बल्कि यह अनुभव कराता है कि अकेलापन कैसा होता है; वह हमें केवल यह नहीं बताता कि बच्चे माता–पिता से दूर हैं, बल्कि उस दूरी से उत्पन्न मानसिक आघात का अनुभव भी कराता है. चित्रा मुद्गल और काशीनाथ सिंह जैसे लेखकों ने वृद्ध जीवन की इन सूक्ष्म अनुभूतियों को कथा के माध्यम से सामाजिक चेतना का विषय बनाया है. यही इन उपन्यासों की सबसे बड़ी उपलब्धि है.

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि चित्रा मुद्गल कृत 'गिलिगडु' और काशीनाथ सिंह कृत 'रेहन पर रग्घू' समकालीन हिंदी साहित्य में वृद्ध–विमर्श को गंभीर मानवीय और सामाजिक आधार

प्रदान करने वाले महत्त्वपूर्ण उपन्यास हैं. दोनों रचनाएँ अलग–अलग सामाजिक परिवेशों के माध्यम से वृद्धावस्था की पीड़ा, अकेलेपन, उपेक्षा, असुरक्षा, आत्मसम्मान, संपत्ति, पीढ़ीगत संघर्ष और टूटते पारिवारिक संबंधों की गहरी पड़ताल करती हैं. 'गिलिगडु' यह दिखाता है कि परिवार और संतान होते हुए भी वृद्ध व्यक्ति किस प्रकार भावनात्मक रूप से अकेला हो सकता है. कर्नल स्वामी की जीवन–त्रासदी आधुनिक समाज की उस विडंबना को सामने लाती है जिसमें पिता अपनी संतानों के लिए सब कुछ समर्पित कर देता है, किंतु वृद्धावस्था में उसी को प्रेम, सुरक्षा और अपनापन प्राप्त नहीं होता. बाबू जसवंत सिंह का चरित्र यह बताता है कि परिवार के बीच उपस्थित व्यक्ति भी तब अकेला हो सकता है जब उसकी उपस्थिति को सम्मान और अर्थ न दिया जाए. दूसरी ओर, 'रेहन पर रग्घू' में रघुनाथ की त्रासदी भूमंडलीकरण, नई आर्थिक संस्कृति और पीढ़ियों के बदलते मूल्यों से जुड़कर सामने आती है. उन्होंने अपने बच्चों के भविष्य के लिए श्रम, पूँजी और जमीन तक दाँव पर लगा दी, किंतु वृद्धावस्था में उन्हें अनुभव होता है कि जिन संबंधों को उन्होंने जीवन का केंद्र माना था, नई पीढ़ी उन्हें उसी भावनात्मक दृष्टि से नहीं देखती. जमीन उनके लिए स्मृति, पूर्वजों और अस्मिता का प्रतीक है, जबकि नई पीढ़ी के लिए वह आर्थिक मूल्य में परिवर्तित की जा सकने वाली संपत्ति बन जाती है.

दोनों उपन्यास हमें यह समझाते हैं कि वृद्धावस्था की वास्तविक आवश्यकता केवल आर्थिक सहायता नहीं है. वृद्ध व्यक्ति को सबसे अधिक सम्मान, संवाद, अपनापन, भावनात्मक सुरक्षा और आत्मसम्मान की आवश्यकता होती है. वह दया का नहीं, अधिकार और सम्मान का अधिकारी है. उसने अपने जीवन का श्रम, अनुभव और त्याग परिवार तथा समाज को दिया है. अतः उसे सम्मानपूर्वक जीने का अवसर देना केवल पारिवारिक दायित्व नहीं, बल्कि सभ्य समाज की नैतिक पहचान है. वृद्ध–विमर्श नई पीढ़ी के विरुद्ध आरोप लगाने का विमर्श नहीं है. इसका उद्देश्य पीढ़ियों के बीच संवाद, सहानुभूति और परस्पर उत्तरदायित्व विकसित करना है. प्रत्येक पीढ़ी की अपनी परिस्थितियाँ, चुनौतियाँ और आकांक्षाएँ होती हैं. आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिक जीवन की व्यस्तता और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच पारिवारिक संवेदनशीलता समाप्त न हो.

वृद्ध व्यक्ति को अतीत का अनुपयोगी अवशेष समझने के बजाय अनुभव, स्मृति और जीवन–ज्ञान के स्रोत के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए. नई पीढ़ी यदि उनके अनुभव से सीखती है और वृद्ध पीढ़ी बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों को समझने का प्रयास करती है, तो दोनों के बीच अधिक स्वस्थ और लोकतांत्रिक संबंध स्थापित हो सकते हैं. अंततः एक समाज की सभ्यता का मूल्यांकन केवल उसकी आर्थिक प्रगति, तकनीकी विकास अथवा भौतिक संपन्नता से नहीं किया जा सकता. उसकी वास्तविक संवेदनशीलता इस बात से भी निर्धारित होती है कि वह अपने बच्चों, स्त्रियों, वंचितों और वृद्धों के साथ कैसा व्यवहार करता है. जो समाज अपने वृद्धों को सम्मान, सुरक्षा और आत्मीयता प्रदान करता है, वही वास्तव में मानवीय और सभ्य समाज कहलाने का अधिकारी है.

हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि आज जो व्यक्ति वृद्ध है, वह कभी युवा था; और आज जो युवा है, वह भी एक दिन वृद्ध होगा. इस जीवन–सत्य का बोध ही पीढ़ियों के बीच संवेदना और उत्तरदायित्व का आधार बन सकता है. 'गिलिगडु' और 'रेहन पर रग्घू' इसी मानवीय सत्य की साहित्यिक अभिव्यक्तियाँ हैं. ये उपन्यास हमें वृद्धावस्था को दया या बोझ की दृष्टि से नहीं, बल्कि गरिमा, अधिकार, अनुभव और मानवीय संवेदना के दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा देते हैं.

इस प्रकार वृद्ध–विमर्श केवल बुजुर्गों की समस्याओं का विमर्श नहीं, बल्कि परिवार, समाज, आधुनिकता और मानवीय संबंधों के भविष्य का विमर्श भी है. साहित्य इस प्रश्न का साक्षी ही नहीं, समाज को संवेदनशील बनाने वाला एक महत्त्वपूर्ण माध्यम भी है.

संदर्भ सूची

1. गिलगडू – चित्रा मुद्गल, पृ. सं. –21–22.
2. गिलगडू – चित्रा मुद्गल, पृ. सं. –134.
3. गिलगडू – चित्रा मुद्गल, पृ. सं. –134.
4. रेहन पर रग्घू – काशीनाथ सिंह, पृ.सं. – 90.
5. रेहन पर रग्घू – काशीनाथ सिंह, पृ.सं. – 93.